गोरा
अध्याय 20

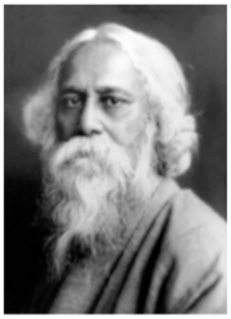

हिन्दी ADDA

रविंद्रनाथ टैगोर

गोरा

अध्याय 20

https://www.hindiadda.com/gora-part-xx/

अपने यहाँ बहुत दिन उत्पीड़न सहकर आनंदमई के पास बिताए हुए इन कुछ दिनों में जैसी सांत्वना सुचरिता को मिली वैसी उसने कभी नहीं पाई थी। आनंदमई ने ऐसे सरल भाव से उसे अपने इतना समीप खींच लिया कि सुचरिता यह सोच ही नहीं सकी कि कभी वे उससे दूर या अपरिचित थीं। न जाने कैसे उन्होंने सुचरिता के मन को पूरी तरह समझ लिया था और बिना बात किए भी वह सुचरिता को जैसे एक गंभीर सांत्वना देती रहती थीं। सुचरिता ने आज तक कभी 'माँ' शब्द का इस प्रकार उसमें अपना पूरा हृदय उँडेलकर उच्चारण नहीं किया था। वह कोई काम न रहने पर भी आनंदमई को 'माँ' कहकर पुकारने के लिए तरह-तरह के बहाने खोजकर बुलाती रहती थी। ललिता के विवाह के सब कर्म संपन्न हो जाने पर थकी हुई बिस्तर पर लेटकर वह बार-बार सिर्फ एक ही बात सोचने लगी, कि अब आनंदमई को छोड़कर वह कैसे जा सकेगी। वह अपने-आप ही से कहने लगी, 'माँ-माँ-माँ!' पुकारते-पुकारते उसका हृदय भर उठा और आँखों से आँसू झरने लगे। तभी एकाएक उसने देखा, मसहरी उठकर आनंदमई उसके पास आ गई हैं और उस थपथपाती हुई पूछ रही है, "मुझे बुलाया था?"

तब सुचरिता को याद आया कि वह 'माँ-माँ' पुकारती रही थी। वह कुछ बोल नहीं सकी, आनंदमई की गोद में मुँह छिपाकर रोने लगी। आनंदमई भी बिना कुछ बोले धीरे-धीरे उसका बदन सहलाती रहीं। उस रात वे सुचरिता के पास ही सोईं।

विनय का विवाह हो जाने पर तत्काल आनंदमई विदा लेकर न जा सकीं। उन्होंने कहा, "ये तो दोनो अनाड़ी हैं- इनकी घर-गृहस्थी सँवारे बिना मैं कैस चली जाऊँ?"

सुचरिता ने कहा, "माँ, तब तो उतने दिन मैं भी तुम्हारे पास रहूँगी।"

उत्साहित होकर ललिता ने भी कहा, "हाँ माँ, कुछ दिन सुचि दीदी भी हमारे साथ रहें।"

यह प्रस्ताव सुनकर सतीश भी दौड़ा आया और सुचरिता के गले से लिपटकर उछलता-उछलता बोला, "हाँ दीदी, मैं भी तुम लोगों के साथ रहूँगा।"

सुचरिता ने कहा, "तेरी तो पढ़ाई है, बक्त्यार।"

सतीश बोला, "विनय बाबू मुझे पढ़ा देंगे।"

सुचरिता ने कहा, "तब विनय बाबू तेरी मास्टरी नहीं कर सकेंगे।"

साथ के कमरे से ही पुकारकर विनय ने कहा, "ज़रूर करूँगा। एक दिन में ऐसा क्या निकम्मा हो गया हूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। अनेक रात जागकर जितना कुछ लिखना-पढ़ना सीखा था वह सब एक ही रात में भूल गया हूँगा, ऐसा तो नहीं लगता।"

आनंदमई ने सुचरिता से पूछा, "तुम्हारी मौसी क्या राज़ी होंगी?"

सुचरिता ने कहा, "मैं उन्हें चिट्ठी लिखकर पूछ लेती हूँ।"

आनंदमई ने कहा, "तुम मत लिखो, मैं ही लिखती हूँ।"

आनंदमई समझती थीं कि यदि सुचरिता स्वयं वहाँ रहने की इच्छा प्रकट करेगी तो हरिमोहिनी को बुरा लगेगा। लेकिन उनके आग्रह पर हरिमोहिनी अगर नाराज़ भी होंगी तो उन्हीं पर होंगी- उसमें सुचरिता की कोई हानि नहीं होगी।

चिट्ठी में आनंदमई ने यही लिखा था कि ललिता की नई गृहस्थी ठीक-ठीक कर देने के लिए उन्हें कुछ दिन और विनय के घर रहना होगा, उतने दिन सुचरिता को भी उनके साथ रहने की अनुमति मिल जाय तो बहुत मदद हो जाएगी।

आनंदमई की चिट्ठी पाकर हरिमोहिनी केवल क्रुध्द ही नहीं हुईं बल्कि उसके मन में एक विशेष संदेह भी उत्पन्न हुआ। सोचा, मैंने लड़के को घर आने से मना कर दिया है, इसलिए अब माँ सुचरिता को फँसाने के लिए चालाकी से जाल फैला रही है। इसमें माँ-बेटे की साज़िश है, यह उन्होंने साफ देख लिया। अब उन्हें यह भी याद आया कि आरंभ में ही आनंदमई के रंग-ढंग देखकर वह उन्हें अच्छी नहीं लगी थीं।

और विलंब न करके जितनी जल्दी संभव हो सके सुचरिता को सुविख्यात राय-परिवार में शामिल करके उसकी सुरक्षा की व्यवस्था कर देने से ही हरिमोहिनी राहत पा सकेंगी। कैलाश को भी यों कितने दिन रोके रखा जा सकता है? वह बेचारा दिन-रात तम्बाकू पी-पीकर घर की दीवारें काली किए दे रहा था।

जिस रोज़ हरिमोहिनी को चिट्ठी मिली, उसके अगले दिन सबेरे ही वह पालकी पर सवार होकर अपने बैरे को साथ लेकर विनय के घर जा पहुँचीं। उस समय निचले कमरे में सुचरिता, ललिता और आनंदमई रसोई की तैयारी में लगी हुई थीं और ऊपर के कमरे से सतीश के अंग्रेज़ी शब्दों की वर्तनी और उनके बंगला पर्याय रटने का तीव्र स्वर आकर सारे घर को गुँजा रहा था। घर पर उसके गले की ताकत का ठीक

अनुमान न होता था- लेकिन यहाँ इस बात का पक्का प्रमाण देते रहने के लिए कि वह अपनी पढ़ाई की बिल्कुल अवहेलना नहीं करता, उसने अपने स्वर को और ऊँचा उठाने के लिए ज़ोर लगाना पड़ता था।

हरिमोहिनी को आनंदमई ने बड़े आदर से बैठाया। लेकिन उस सब शिष्टाचार की ओर हरिमोहिनी ने ध्यान न देकर एकाएक कहा, "मैं राधारानी को लेने आई हूँ।"

आनंदमई ने कहा,"तो ठीक है, ले जाना, ज़रा बैठो तो!"

हरिमोहिनी ने कहा, "नहीं, मेरी पूजा-अर्चना सब अभी यों ही पड़ी है, अभी प्रार्थना भी नहीं हुई, अभी तो मैं बिल्कुल नहीं बैठ सकती।"

कुछ बातचीत किए बिना सुचरिता लौकी छीलने में लगी थी। हरिमोहिनी ने उसी को सम्बोधित करके कहा, "सुनती हो, देर हो रही है!"

ललिता और आंनदमई चुप बैठी रहीं। काम छोड़कर सुचरिता उठ खड़ी हुई और बोली, "चलो, मौसी!"

हरिमोहिनी के पालकी की ओर मुड़ने पर सुचरिता ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "ज़रा इस कमरे में आओ!"

दूसरे कमरे में पहुँचकर दृढ़ स्वर में सुचरिता ने कहा, "तुम मुझे लेने ही आई हो तो मैं सबके सामने तुम्हें यों ही नहीं लौटा सकती, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ, लेकिन आज दोपहर को ही मैं फिर यहाँ लौट आऊँगी।"

बिगड़कर हरिमोहिनी ने कहा, "यह कैसी बात है? तो फिर यही क्यों नहीं कहतीं कि हमेशा यहीं रहोगी!"

सुचरिता ने कहा, "हमेशा रहना तो नहीं मिलेगा। इसीलिए जितने दिन उनके पास रह सकती हूँ उन्हें नहीं छोड़ँगी।"

इस बात से हरिमोहिनी का हृदय जल गया लेकिन यह सोचकर कि अभी कुछ कहने का अवसर नहीं है। वह चुप रहीं।

आनंदमई के पास आकर सुचरिता ने मुस्कराकर कहा, "माँ, तो मैं ज़रा घर हो आऊँ?"

कोई प्रश्न किए बिना आनंदमई ने कहा, "ठीक है, हो आओ।"

ललिता के कान में धीरे से सुचरिता ने कहा, "आज दोपहर को ही फिर आ जाऊँगी।"

पालकी के सामने रुककर सुचरिता ने कहा, "और सतीश?"

हरिमोहिनी बोलीं, "सतीश को रहने दो।"

'घर लौटकर सतीश विघ्न बन सकता है,' हरिमोहिनी ने यह सोचकर उसके दूर रहने को ही शुभ माना।

दोनों के पालकी पर सवार हो जाने पर हरिमोहिनी ने भूमिका बाँधने की कोशिश की। बोलीं, "ललिता का तो ब्याह हो गया। चलो अच्छा हुआ,एक लड़की की ओर से तो परेशबाबू बेफिक्र हुए।"

यों शुरुआत करके उन्होंने बताना शुरू किया कि घर में अविवाहित लड़की का होना कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी है और उसके कारण अभिभावकों को कितनी चिंता लगी रहती है!

"तुमको क्या बताऊँ, मुझे और कोई फिक्र नहीं है, भगवान का नाम लेते-लेते भी यही चिंता बीच में आ घेरती है। सच कहती हूँ, ठाकुर की सेवा में मैं पहले की तरह मन ही नहीं लगा पाती। मैं कहती हूँ, गोपीवल्लभ, सब छीन लेने के बाद अब फिर तूने मुझे किस नये जाल में फँसा दिया।"

हरिमोहिनी के लिए यह समस्या केवल सांसारिक चिंता की नहीं थी, यह उनके मुक्ति के मार्ग में भी बाधा बन रही थी। उनके इतने बड़े संकट की बात सुनकर भी सुचरिता चुप ही रही, इससे हरिमोहिनी उसके मन की प्रवृत्ति ठीक-ठीक नहीं समझ सकीं। लेकिन यह जो कहा जाता है कि मौन सम्मति का लक्षण है, इसी कहावत का अनुकूल अर्थ लगाकर उन्होंने सोच लिया कि सुचरिता कुछ-कुछ राज़ी है।

हरिमोहिनी ने कुछ ऐसा भाव प्रकट किया कि उन्होंने सुचरिता-जैसी लड़की को हिंदू-समाज में शामिल कराने के अत्यंत कठिन व्यापार को आसान बना लिया है, अचानक ऐसा एक सा सुयोग आ गया है कि बड़े-बड़े कुलीन ब्रह्मणों के घर के न्यौते में उनके साथ बैठने पर भी कोई चूँ तक न कर सकेगा।

भूमिका के यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते पालकी घर पर आ पहुँची। दोनों ने द्वार पर उतरकर घर में प्रवेश किया। ऊपर जाते समय सुचरिता ने देख लिया कि ड्योढ़ी के साथ वाले कमरे में कोई अपरिचित आदमी बैरे से बड़े ज़ोर-शोर के साथ तेल मालिश करवा रहा है। उन्हें देखकर भी वह झिझका नहीं, बल्कि विशेष कौतूहल के साथ सुचरिता की ओर ताकने लगा।

ऊपर जाकर हरिमोहिनी ने सुचरिता को अपने देवर के आने की सूचना दी। इससे पहले जो भूमिका बाँधी गई थी, उसके साथ मिलाकर सुचरिता ने इस घटना का ठीक-ठीक अर्थ समझ लिया। हरिमोहिनी उसे समझाने लगीं कि घर में पाहुने हैं, ऐसी स्थिति में उन्हें छोड़कर सुचरिता का दोपहर को ही चले जाना अभद्रता होगी।

ज़ोर सिर हिलाकर सुचरिता ने कहा, "नहीं मौसी, मुझे जाना ही होगा।"

हरिमोहिनी ने कहा, "तब ठीक है- आज के दिन रह जाओ, कल चली जाना!"

सुचरिता बोली, "मैं अभी स्नान करके बाबा के यहाँ खाने जाऊँगी और वहीं से ललिता के घर चली जाऊँगी।"

तब हरिमोहिनी ने खुलासा करके ही कहा, "वह तुम्हीं को देखने तो आया है।"

लाल होते हुए सुचरिता ने कहा, "मुझे देखकर क्या होगा?"

हरिमोहिनी बालीं, "ज़रा सुनो! आजकल के समय में क्या बिना देखे ये सब काम हो सकते हैं! पुराने समय में तो हो भी जाते थे। तुम्हारे मौन ने तो मुझे 'शुभ-दृष्टि' से पहले देखा ही नहीं था।" इतना साफ इशारा कर देने के बाद एक साथ हरिमोहिनी ने और भी कई बातें कह डालीं। विवाह से पहले लड़की को देखने के लिए किस तरह प्रसिध्द राय-परिवार से अनाब बंधु नाम का उनका ख़ानदानी नौकर और ठाकुरदासी नाम की बुढ़िया कहारिन, ये दोनों अपने साथ पगड़ी पहने और लाठी लिए दरबान को लेकर हरिमोहिनी के पीहर आए थे, और उस समय अभिभावक कैसे चिंतित हो उठे थे, और राय-वंश के इन नौकरों को खिला-पिलाकर और खातिर से प्रसन्न करने के लिए पूरे घर के लोग कैसे व्यस्त हो उठे थे-यह सब बखान करने के बाद हरिमोहिनी ने लंबी साँस ली। अब सब-कुछ कितना बदल गया है।

हरिमोहिनी ने कहा, "कोई विशेष झंझट नहीं है, एक बार पाँच मिनट के लिए मिल लेना!"

सुचरिता ने कहा,"नहीं।"

यह 'नहीं' इतना दृढ़ और साफ था कि हरिमोहिनी सहम गईं। फिर बोलीं, "अच्छा खैर, न सही। देखने की कोई आवश्यकता तो नहीं है। यों कैलाश आजकल का लड़का है, पढ़ा-लिखा है, तुम लोगों की तरह ही वह भी कुछ नहीं मानता। कहता है पात्री को अपनी आँखों देखूँगा। तो तुम तो सबके सामने आती-जाती हो इसलिए मैंने कहा दिया- देखेगा तो कौन बड़ी बात है, एक दिन दिखा दूँगी। लेकिन खैर, तुम्हें शरम आती है तो न सही।"

इतना कहकर पूरे विस्तार के साथ हरिमोहिनी बताने लगीं कि कैलाश कैसा अद्‌भुत पढ़ा-लिखा है, कैसे उसने कलम के एक ही झटके से गाँव के पोस्टमास्टर को संकट में डाल दिया था- आस-पास के गाँवों में जिस किसी को मुकदमा लड़ना होता है या दरख़ास्त लिखनी होती है वह कैला की सलाह के बिना एक पग भी नहीं रख सकता। और कैलाश के स्वभाव और चरित्र की तो बात करना ही व्यर्थ है- स्त्री की मृत्यु के बाद वह तो विवाह करना ही नहीं चाहता था, जब सगे-संबंधियों ने मिलकर बहुत ज्यादा ज़ोर डाला तो केवल बड़ों का आदेश पालन करने के लिए राज़ी हुआ और इस प्रस्ताव के लिए उसे राजी करने में हरिमोहिनी को क्या कम परिश्रम करना पड़ा! वह तो सुनना ही नहीं चाहता था। उसका इतना बड़ा खानदान है और समाज में उसका इतना मान है।

सुचरिता उस मान को कम करने के लिए तैयार नहीं हुई। अपने गौरव और स्वार्थ की ओर उसने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। उसके रवैये से तो ऐसा जान पड़ा कि उसे हिंदू-समाज में स्थान न भी मिला तो भी उसे कोई परेशानी नहीं होगी। इतनी कोशिश के बाद कैलाश को विवाह के लिए राज़ी किया जा सका है, सुचरिता के लिए यह कितने बड़े गौरव की बात है, इसे वह मूढ़ समझ ही नहीं सकी, उलटे इसमें उसने अपना अपमान ही समझा! आजकल के नए ज़माने के उलटे चलन से हरिमोहिनी का मन खट्टा हो गया। तब अपना गुस्सा निकालने के लिए बार-बार वह गोरा को लक्ष्य करके ताने देने लगीं, "गोरा अपने को हिंदू कहकर चाहे बड़ाई में पड़कर ब्रह्म-परिवार की किसी पैसे वाली लड़की से विवाह करेगा तो समाज के कोप से उसे कौन बचा सकेगा? तब दसियों लोगों का मुँह बंद करने में ही सब रुपया चुक जाएगा।"

सुचरिता ने कहा**,** "मौसी**,** तुम ये सब बातें क्यों कह रही हो**?** तुम जानती हो कि इन सबका कोई आधार नहीं है।

इस पर हरिमोहिनी ने कहा, कि इस उम्र में उन्हें बातों में भुलाना किसी के लिए संभव नहीं है। वह ऑख-कान-दिमाग खोलकर रहती हैं, सब-कुछ देखती-सुनती-समझती हैं। चुप रहती हैं तो केवल आश्चर्यवश। उन्होंने यह भी कहा कि उनका दृढ़ विश्वास है, गोरा अपनी माँ से सलाह करके ही सुचरिता से विवाह करने की कोशिश कर रहा है, और उस विवाह का असली उद्देश्य भी कुछ बहुत शुध्द नहीं है, यदि हरिमोहिनी राय-परिवार के सहयोग से सुचरिता की रक्षा न कर सकीं तो कल को वही सब होने वाला है।

सुचरिता सब सहती आई थी, अब और न सह सकी। बोली, "तुम जिनकी बात कह रही हो उन पर मेरी श्रध्दा है। मेरा उनके साथ जो संबंध है उसे जब तुम किसी तरह सही रूप में समझ ही नहीं सकतीं तब मेरे पास दूसरा उपाय नहीं है , सिवा इसके कि मैं यहाँ से चली जाऊँ-तुम जब शांत हो जाओगी और घर में तुहारे साथ अकेली रह सकूँगी तभी मैं लौटूँगी।"

हरिमोहिनी बोलीं, "अगर तेरा मन गौरमोहन की तरफ नहीं है, और उसके साथ तेरा ब्याह नहीं होने की बात तय है, तब इस पात्र ने तेरा क्या बिगाड़ा है? तू हमेशा क्वारी तो नहीं रहेगी!"

सुचरिता ने कहा**, "**क्यों नहीं रहूँगी**?** मैं विवाह नहीं करूँगी।**"**

ऑखें फाड़कर हरिमोहिनी ने कहा**, "**क्या बूढ़ी होने तक ऐसे ही**.... ?"**

सुचरिता ने कहा**, "**हाँ, मरने तक**!"**

आघात पाकर गोरा के मन में एक परिवर्तन आ गया। कैसे सुचरिता उसके मन पर यों छा गई थी, उसके कारण पर विचार करके गोरा ने यही तय किया कि वह उन लोगों से ज्यादा मिलता-जुलता रहा था, जिससे अपने अनजाने ही कहीं उसने अपने को उसके साथ उलझा लिया था। अहंकार से भरकर वह निषेध की सीमा का उल्लंघन कर गया था। यह हमारे देश की पध्दति नहीं है। हर कोई अपनी मर्यादा की रक्षा स्वयं न करता रहे तो वह न केवल जाने-अनजाने अपना अमंगल कर बैठता है, बल्कि दूसरे का हित करने की अपनी शक्ति भी गँवा बैठता है। हिल-मिल जाने से कोई प्रवृत्तियाँ प्रबल हो उठती हैं और ज्ञान, निष्ठा और शक्ति को धुंधला कर देती हैं।

गोरा ने इस सत्य को केवल ब्रह्म-परिवार की लड़कियों से मिल-जुलकर ही पहचाना हो, ऐसी बात नहीं थी। आम लोगों से मिलने जाकर भी उसने अपने को एक भँवर में

फँसा दिया था, लगभग अपने को खो ही दिया था। क्योंकि उसके मन में पग-पग पर दया उपजती थी, इस दया के वशीभूत वह केवल यही सोचता रहता था कि यह बुरा है, यह अन्याय है, इसे दूर कर देना चाहिए। लेकिन यह दयावृत्ति ही अच्छे-बुरे की ठीक-ठीक पहचान करने की शक्ति को भी विकृत कर देती है। दया करने की झोंक में आकर हम सत्य को निर्विकार भाव से देखने की सामर्थ्य खो बैठते हैं। करुणा के धुएँ से काले पड़कर हल्के रंग भी हमें गहरे दीखने लगते हैं।

गोरा ने सोचा, हमारे देश में इसीलिए यह पध्दति चली आई है कि जि पर सबके हित का भार है उन्हें निर्लिप्त ही रहना चाहिए। यह बात बिल्कुल ग़लत है कि राजा के लिए प्रजा-पालन करना तभी संभव है जब राजा प्रजा के साथ घनिष्ठ रूप से घुल-मिल जाए। राजा को प्रजा के बारे में जैसे ज्ञान की ज़रूरत होती है, बहुत मेल-जोल से वह कलुषित हो जाता है। इसीलिए तो प्रजा-जन अपने आप ही अपने राजा को एक दूरी से मंडित रखते हैं। राजा के उनकी संगत का हो जाते ही फिर राजा की कोई ज़रूरत ही नहीं रहती।

ब्राहमण को भी उसकी तरह ही दूर और निर्लिप्त रहना चाहिए। ब्राहमण को तो बहुतों का मंगल साधना है, इसीलिए वह भी समूह संसर्ग से वंचित हैं

गोरा ने मन-ही-मन कहा- मैं भारतवर्ष का वही ब्रहममण हूँ- दस आदमियों से घिरकर, व्यवसाय के कीचड़ में लथपथ होकर, धन के लोभ में पड़कर जो ब्राहमण गले में शूद्रता का फंदा डालकर अपने ही आप फाँसी चढ़ जाता है, उसे गोरा ने शूद्र से भी नीच जाना, बल्कि उसे जीवित मानने से भी इंकार किया। जो शूद्र है वह अपनी शूद्रता के सहारे ही जीता है, लेकिन ऐसा ब्राहमण तो ब्राहमणत्व के अभाव के कारण मुर्दा है, और इसीलिए अपवित्र है। ऐसों के ही कारण आज भारतवर्ष इतना दीन होकर ऐसी अशुभ अवस्था से गुज़र रहा है।

अपने मन को गोरा ने इस बात के लिए कड़ा किया कि वह अपने भीतर ही ब्राहमण के इस संजीवन-मंत्र की साधना करेगा। मन-ही-मन उसने कहा- मुझे सर्वथा पवित्र होना होगा। मैं उस स्तर पर नहीं खड़ा हूँ जिस पर सब साधारण लोग खड़े हैं। मेरे लिए बंधुत्व आवश्यक सामग्री नहीं है। जिन लोगों के लिए नारी का साथ नितांत आवश्यक होता है, उन साधारण लोगों की श्रेणी का मैं नहीं हूँ, और देश के साधारण-इतर लोगों के घनिष्ठ सहवास का मेरे लिए संपूर्ण निषेध है। जैसे वर्षा के लिए पृथ्वी सुदूर आकाश की ओर ताकती रहती है, वैसे ही इन सबकी आँखें ब्राहमण की ओर लगी रहती हैं- मैं भी इन्हीं में जा मिलूँगा तो इन्हें बचाएगा कौन?

अब तो कभी गोरा ने देव-पूजा की तरफ ध्यान नहीं दिया था। लेकिन जब से उसका हृदय क्षुब्ध हो उठा था तब से अपने को वह किसी तरह रोक नहीं पा रहा था। अपना काम उसे नीरस जान पड़ता था और जीवन जैसे अधूरा होकर तड़प रहा था। इसीलिए गोरा पूजा में मन लगाने की कोशिश करने लगा था। प्रतिमा के सम्मुख स्थिर बैठकर अपने मन को गोरा पूरी तरह मूर्ति पर केंद्रित करने की कोशिश करता, लेकिन किसी ढंग से भी अपने भीतर भक्ति को न जगा पाता। बुध्दि के द्वारा वह देवता की व्याख्या करना चाहता था।

रूपक का सहारा लिए बिना उसे किसी तरह ग्रहण न कर पाता था। किंतु रूपक को हृदय की भक्ति नहीं दी जाती, आध्यात्मिक व्याख्या की पूजा नहीं की जाती। बल्कि जब गोरा मंदिर में बैठकर पूजा करने का यत्न छोड़कर कमरे में बैठकर मन-ही-मन अथवा किसी से बहस करते समय अपने मन और वचन को भावों की धारा में बह जाने देता, तभी उसके भीतर एक आनंद और भक्ति के रस का संचार होता। फिर भी गोरा ने पूजा छोड़ी नहीं, वह यथानियम रोज़ाना पूजा पर बैठता रहा और इसे उसने नियम ही मान लिया। उसने मन को यह कहकर समझाया कि जहाँ भाव के सूत्र द्वारा सबसे मिलने की सामर्थ्य न हो, वहाँ नियम का सूत्र ही मेल बनाए रखता है। गोरा जब-जब किसी गाँव में जाता वहाँ देव-मंदिर में प्रवेश करके गंभीर भाव से ध्यान करता हुआ मन-ही-मन कहता- यही मेरा विशेष स्थान है- एक ओर देवता और दूसरी ओर भक्त, दोनों के बीच सेतु-रूप ब्राह्मण दोनों को मिलाता है। धीरे-धीरे गोरा को लगने लगा कि ब्राह्मण के लिए भक्ति ज़रूरी नहीं है। भक्ति विशेषत: जन-साधारण की ही चीज़ है। भक्त और भक्ति कि विषय के बीच में जो सेतु हैं वह ज्ञान का ही सेतु है। जैसे यह सेतु दोनों को मिलाता है। वैसे ही दोनों की मर्यादा भी निर्दिष्ट कर देता है। भक्त और देवता के बीच विशुध्द ज्ञान का व्यवधान न रहे तो सभी कुछ विकृत हो जाए। इसीलिए भक्ति-विफलता ब्राह्मण के काम की चीज़ नहीं है, ब्राह्मण ज्ञान के शिखर पर बैठकर इस भक्ति के रस को सर्वसाधारण के उपभोग के लिए, शुध्द रखने के लिए तपस्या करता है। संसार में जैसे ब्राह्मण के लिए आराम का योग नहीं है, वैसे ही देवार्चना में भी ब्राह्मण के लिए भक्ति का योग नहीं है। इसी में ब्राह्मण का गौरव है। संसार में ब्राह्मण लिए नियम-संयम है, धर्म-साधना में ब्राह्मण के लिए ज्ञान है।

हृदय ने गोरा को मात दी थी, इस अपराध के लिए गोरा ने हृदय के लिए निर्वासन-दंड का निश्चय किया। लेकिन अपराधी को निर्वासन में ले कौन जाएगा? वैसा सैन्य कहाँ है?

गंगा के किनारे एक बगीचे में प्रायश्चित-सभा का आयोजन होने लगा।

अविनाश के मन में इस बात का मलाल था कि इस अनुष्ठान में कलकत्ता से बाहर होने के कारण इसकी ओर लोगों का ध्यान उतना नहीं जाएगा जितना कि जाना चाहिए था। अविनाश जानता था कि अपने लिए गोरा को प्रायश्चित करने की कोई ज़रूरत नहीं है, जरूरत है देश के लोगों के लिए- 'मॉरल इफैक्ट' के लिए! इसीलिए यह काम भीड़ में ही होना चाहिए था।

लेकिन गोरा उसके लिए राज़ी नहीं हुआ। वह जैसा बड़ा यज्ञ करके वेद-मंत्रों के पाठ के साथ यह काम करना चाहता था, वैसे काम के लिए के लिए कलकत्ता शहर ठीक स्थान नहीं था- उसके लिए तो तपोवन ही पयुक्त होता। मंत्र मुखरित, होमाग्नि-दीप्त एकांत गंगा-तीर पर गोरा उस प्राचीन भारतवर्ष का आह्नान करेगा जो सारे संसार का गुरु रहा है, और स्नान करके पवित्र होकर उसी गुरु से नवजीवन की दीक्षा लेना। 'मॉरल इफैक्ट' की फिक्र गोरा को नहीं थी। अविनाश ने और कोई उपाय न देखकर समाचार-पत्रों का सहारा लिया। गोरा को बताए बिना ही उसने उस प्रायश्चित का समाचार सब अखबारों में भेज दिया। इतना ही नहीं, सम्पादकीय स्तंभों के लिए उसने एक पूरा प्रबंध भी लिख भेजा, जिसमें उसने इस बात पर बल दिया कि गोरा- जैसे निर्मल तेजस्वी ब्राह्मण को तो कोई दोष छू ही नहीं सकता, फिर भी वह आजकल के पतित भारतवर्ष का सारा पातक अपने कंधों पर लेकर सारे देश की ओर से प्रायश्चित कर रहा है। अविनाश ने लिखा, "जैसे हमारा देश अपने दुष्कर्मों के फलस्वरूप विदेशियों के बंदीगृह में दु:ख भोग रहा है, वैसे ही गोरा ने भी अपने जीवन में स्वेच्छा से कारावास-दु:ख स्वीकार किया। इस प्रकार उसने देश का दु:ख जैसे अपने कंधों पर ओट लिया, वैसे ही देश के अनाचार का प्रायश्चित भी वह स्वयं कर रहा है। इसलिए हे बंगाली भाइयों, भारत की पच्चीस करोड़ दुखी संतानों...."इत्यादि, इत्यादि।

गोरा ये सब लेख पढ़कर झल्ला उठा। लेकिन अविनाश को रोकना असंभव था। गोरा द्वारा उसे फटकारने पर भी वह मानता नहीं था, बल्कि और प्रसन्न होता था। मेरे गुरु भावों की बहुत ऊँची दुनिया में रहते हैं तभी इस मामूली दुनिया की बातें वह नहीं समझते। बैकुंठ-वासी नारद की तरह वीणा बजाकर वह विष को पिघलाकर गंगा की सृष्टि करा रहे हैं, लेकिन उस गंगा को धरती पर लाकर सागर-संतान की भस्म का उध्दार करने का काम इस दुनिया के भगीरथ का है- वह काम देवलोक के वासियों का नहीं है। ये दोनों काम बिल्कुल अलग-अलग है। इसलिए अविनाश की हरकतों पर

जब गोरा आग-बबूला हो उठता तब मन-ही-मन वह कहता- जैसे हमारे गुरु का चेहरा बिलकुल शिवजी-जैसा है, वैसे ही मन से भी वह निरे भोलानाथ हैं। न कुछ समझते हैं, न कुछ व्यवहार का ज्ञान रखते हैं, बात-बात में गुस्से से भड़क उठते हैं, पर फिर ठंडे होते भी देर नहीं लगती।

अविनाश के प्रयत्नों के कारण गोरा के प्रायश्चित की चर्चा को लेकर चारों ओर एक बड़ा आंदोलन उठ खड़ा हुआ। गोरा के घर पर उसे देखने और उससे बातचीत करने आने वाली जनता और भी बढ़ गई। रोज़ चारों ओर से इतनी चिट्ठियाँ आने लगीं कि गोरा ने डाक देखना ही बंद कर दिया। गोरा को लगने लगा कि इस देश-व्यापी चर्चा के कारण उसके प्रायश्चित की सात्विकता खत्म हो गई है और वह एक राजसिक व्यापार मात्र हो गया है- काल की प्रवृत्ति ही ऐसी है।

इधर कृष्णदयाल अख़बार को छूते नहीं थे, लेकिन यह चर्चा उनके साधनाश्रम में भी पहुँच गई। उनका बेटा गोरा उनके ही योग्य है जो इतनी धुम-धाम से प्रायश्चित कर रहा है और अपने पिता के पवित्र पद-चिन्हों का अनुसरण करता हुआ एक दिन वह भी उन्हीं की तरह सिध्दपुरुष बन जाएगा। कृष्णदयाल के प्रसादजीवियों ने यह समाचार और आशा बड़े गौरव के साथ कृष्णदयाल तक पहुँचा दी।

गोरा के कमरे में कृष्णदयाल ने कब से प्रवेश नहीं किया था, यह कहना ज़रा मुश्किल था। लेकिन आज वह अपने रेशमी कपड़े उतारकर सूती कपड़े पहने एकाएक उसके कमरे में जा पहुँचे। गोरा वहाँ नहीं दीख पड़ा तो उन्होंने नौकर से पूछा नौकर ने बताया कि गोरा पूजा-घर में है।

"ऐं! पूजा-घर में उसका क्या काम?"

"वह पूजा करते हैं"

हड़बड़ाए हुए-से कृष्णदयाल पूजा-घर में गए तो, देखा सचमुच गोरा पूजा में बैठा है।

बाहर से ही कृष्णदयाल पूजा-घर में गए तो देखा, सचमुच गोरा पूजा में बैठा है।

बाहर से ही कृष्णदयाल ने पुकारा, "गोरा!"

पिता के आने से गोरा आश्चर्यचकित होकर उठ खड़ा हुआ। कृष्णदयाल ने अपने साधनाश्रम में विशेष रूप से अपने इष्टदेवता की प्रतिष्ठा कर ली थी। उनका परिवार

वैष्णव था, किंतु उन्होंने शक्ति-मंत्र ले लिया था, इसलिए गृह देवता के साथ उनका प्रत्यक्ष योग बहुत दिनों से नहीं था।

उन्होंने गोरा से कहा, "आओ-आओ, बाहर आओ!"

गोरा बाहर चला आया। कृष्णदयाल बोले, "यह सब क्या है! यहाँ तुम्हारा क्या काम है?"

गोरा ने कोई जवाब न दिया। कृष्णदयाल बोले, "पुजारी ब्राह्मण तो है, वह तो रोज़ पूजा कर जाता है, उसी से घर के सब लोगों की ओर से पूजा हो जाती है- तुम क्यों इस चक्कर में पड़ते हो?"

गोरा ने कहा, "इसमें बुराई क्या है?"

कृष्णदयाल बोले, "बुराई! तुम क्या जानो! बहुत बड़ी बुराई है। जिसका जहाँ अधिकार नहीं है, उस काम में वह क्यों पड़े? उससे तो अपराध होता है। केवल तुम्हारा ही नहीं, घर-भर के लोगों का।"

गोरा ने कहा, "आंतरिक भक्त की दृष्टि से यदि देखे तक तो देवता के सामने बैठने का अधिकार बहुत थोड़े लोगों को ही होगा। लेकिन आप क्या यह कहना चाहते हैं कि हमारे उन रामहरि ठाकुर का यहाँ पूजा करने का जितना अधिकार है, मेरा उतना भी अधिकार नहीं है?"

कृष्णदयाल गोरा को क्या जवाब दें, तत्काल यह न सोच सके। कुछ देर चुप रहकर बोले, "देखो, रामहरि का तो धंधा ही पूजा करना है। धंधे में जो अपराध होता है उसकी ओर देवता ध्यान नहीं देते। वहाँ भूलें पकड़ने लगें तब तो धंधा बंद ही कर देना होगा- फिर समाज का काम नहीं चल सकता। किंतु तुम तो यह दलील नहीं दे सकते। तुम्हारे यहाँ आने की क्या ज़रूरत है?"

गोरा- जैसे आचारनिष्ठ ब्राह्मण के भी पूजा-गृह में प्रवेश करने से अपराध होता है, कृष्णदयाल जैसे व्यक्ति के मुँह से यह बात नितांत असंगत तो नहीं लगी। इसलिए गोरा कुछ नहीं बोला, बात को पी गया।

तब कृष्णदयाल ने कहा, "और भी एक बात मैंने सुनी है, गोरा! सुनता हूँ तुमने प्रायश्चित करने के लिए पंडितों को बुलाया है?"

गोरा ने कहा, "हाँ।"

एकाएक कृष्णदयाल ने अत्यंत उत्तेजित होकर कहा, "मेरे रहते यह किसी तरह नहीं हो सकेगा।"

गोरा के मन में विद्रोह उमड़ने लगा। वह बोला, "क्यों?"

कृष्णदयाल ने कहा, "क्यों क्या? तुम्हें मैंने पहले भी एक बार कहा था कि तुम प्रायश्चित नहीं कर सकते।"

गोरा ने कहा, "कहा तो था। किंतु कोई कारण तो बताया नहीं।"

कृष्णदयाल बोले, "मैं कारण बताने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। हम तुम्हारे बड़े हैं, हमारी बात तुम्हें मान्य होनी चाहिए। हम लोगों की अनुमति के अभाव में ये सब शास्त्रीय कर्म करने का कोई विधान ही नहीं है। प्रायश्चित में पितरो का श्राध्द करना होता है क्या यह तुम जानते हो?"

विस्मित होकर गोरा ने कहा, "तो उसमें कठिनाई क्या है?"

बिगड़कर कृष्णदयाल ने कहा, "बिल्कुल कठिनाई है। वह मैं कभी नहीं होने दे सकूँगा।"

चोट खाकर गोरा ने कहा, "देखिए, यह मेरा निजी मामला है। मैंने अपनी शुचिता के लिए ही यह आयोजन किया है- इसे लेकर बेकार बहस करके आप क्यों तकलीफ पाते हैं।

कृष्णदयाल ने कहा, "देखो गोरा, हर बात में तुम बहस मत किया करो। ये सब बातें बहस की नहीं है। बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो अभी तुम्हारी समझ में नहीं आ सकतीं। मैं तुम्हें फिर कहता हूँ- तुम जो समझते हो कि तुमने हिंदू-धर्म में प्रवेश पा लिया है, यह तुम्हारी निरी भूल हैं वह तुम्हारे बस का ही नहीं है। तुम्हारे रक्त की हर बूँद, तुम्हारा सिर से पैर तक संपूर्ण उसके प्रतिकूल है। हिंदू एकाएक तो नहीं हुआ जा सकता, उसके लिए जन्म-जन्मांतर का पुण्य चाहिए।"

गोरा का मुँह रक्त वर्ण हो उठा, "जन्मांतर की बात मैं नहीं जानता, किंतु आपके वंश के रक्त से जो अधिकार मुझे मिलता है, क्यों मैं उसका भी दावा नहीं कर सकता?"

कृष्णदयाल ने कहा, "फिर बहस? मेरे सामने बात का खंडन करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? क्या इसी को हिंदू कहते हैं? आख़िर विलायती ठसक जाएगी कहाँ! मैं जो कहता हूँ वह सुनो। यह सब बंद कर दो!"

सिर झुकाए गोरा चुपचाप खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद बोला, "यदि मैं प्रायश्चित न करूँ तो फिर शशिमुखी के विवाह में सबके साथ पंगत में बैठकर खा भी न सकूँगा।"

सहारा पाकर कृष्णदयाल ने कहा, "तो ठीक है-उसमें भी क्या बुराई है? तुम्हारे लिए अलग से आसन लगा दिया जाएगा।"

गोरा ने कहा, "तब तो मुझे समाज से भी अलग होकर ही रहना होगा।"

कृष्णदयाल ने कहा, "वह तो अच्छा ही है।"

उनके इस उत्साह पर गोरा को चकित होते देखकर उन्होंने फिर कहा, "अब यही देखो न, मैं ही किसी के साथ नहीं खाता, न्यौता होने पर भी नहीं। समाज के साथ मेरा ही भला क्या योग है! तुम जिस सात्विक भाव से जीवन बिताना चाहते हो उसके लिए तो तुम्हें भी ऐसा ही मार्ग अपनाना चाहिए। मैं तो समझता हूँ, इसी में तुम्हारा कल्याण है!"

दोपहर में कृष्णदयाल ने अविनाश को बुलवा भेजा। आने पर उससे बोले, "तुम्हीं सब लोग मिलकर गोरा को ऐसा नाच नचा रहे हो न।"

अविनाश ने कहा, "यह आप क्या कह रहे हैं? आपका गोरा तो हम सबको नचाता है। बल्कि वह खुद बहुत कम नाचता है।"

कृष्णदयाल बोले, "लेकिन बाबा, मैं कहता हूँ तुम लोगों का यह सब प्रायश्चितस-व्रायश्चित नहीं हो सकेगा। मेरी उसमें बिल्कुल सम्मति नहीं है। वह सब तुरंत बंद कर दो!"

अविनाश ने सोचा- बूढ़े की यह कैसी ज़िद है!-लेकिन इतिहास में इसके ढेरों दृष्टांत मिल जाएँगे कि बड़े-बड़े आदमियों के बाप स्वयं अपने लड़के का महत्व नहीं पहचान सके। कृणदयाल भी ऐसे ही तो बाप हैं। व्यर्थ ही दिन-रात ढोंगी-संन्यासियों के साथ न रहकर कृष्णदयाल यदि अपने लड़के से ही शिक्षा ग्रहण कर सकते तो उनके लिए कहीं अच्छा होता है।

लेकिन अविनाश चतुर व्यक्ति था। जहाँ बहस-मुबाहसे का कोई फल न हो, और 'मॉरल इफैक्ट' की संभावना भी कम ही हो, वहाँ बेकार का ज़बानी जमा-खर्च करने वाला वह नहीं था। इसलिए उसने कहा, "तो ठीक है महाशय, आपकी राय नहीं है तो नहीं होगा। लेकिन सारा प्रबंध तो हो चुका है, निमंत्रण पत्र भी जा चुके हैं, इधर और देर भी नहीं है, इसलिए न हो तो यही उपाय किया जाय कि गोरा न जाए, उस दिन हम लोग ही प्रायश्चित कर लें, देश के लोगों में पाप की तो कोई कमी नहीं है!"

कृष्णदयाल अविनाश के इस आश्वासन से बेफिक्र हो गए।

कृष्णदयाल की किसी भी बात पर गोरा की कभी विशेष श्रध्दा नहीं रही। आज भी उसका मन उनका आदेश पालन करने की बात स्वीकार न कर सका। सांसारिक जीवन से भी जो जीवन बड़ा है, उसमें माता-पिता के निषेध को गोरा मानने के लिए स्वयं को बाध्य नहीं समझता था। फिर भी आज दिन-भर वह मन-ही-मन बहुत दु:ख पाता रहा। उसके मन में यह अस्पष्ट धारणा घर कर गई थी कि कृष्णदयाल की सारी बात में कहीं कोई छिपा हुआ साम्य है। जैसे एक आकारहीन दु:स्वप्न उसे सताने लगा, जिसे वह किसी प्रकार भी तोड़ नहीं सका। उसे ऐसा लगने लगा जैसे कोई एक साथ ही सभी तरफ से ठेलकर उसे बहुत दूर फेंक देना चाहता हो। अपना अकेलापन आज उसे बहुत बड़ा होकर दीखने लगा। उसके सामने विस्तृत कर्मक्षेत्र था और काम भी बहुत बड़ा था, किंतु उसके साथ में कोई नहीं खड़ा था।

प्रायश्चित-सभा अगले दिन होने वाली थी। तय यह हुआ था कि गोरा रात को ही बगीचे वाले घर में चला जाएगा और वहीं रहेगा। जिस समय वह जाने की तैयारी कर रहा था तभी हरिमोहिनी आ खड़ी हुईं। उन्हें देखकर गोरा को कोई खुशी नहीं हुई। उसने कहा, "आप आई हैं- मुझे तो अभी-अभी जाना होगा- माँ भी कुछ दिन से घर नहीं हैं। उनसे मिलना हो तो.... "

हरिमोहिनी ने कहा, "नहीं बाबा, मैं तुम्हारे ही पास आई हूँ। तुम्हें ज़रा देर तो बैठना ही होगा- ज्यादा देर नहीं करूँगी।"

गोरा बैठ गया। हरिमोहिनी ने सुचरिता की बात चलाई, "तुम्हारी शिक्षा से उसका भारी उपकार हुआ है। यहाँ तक कि जिस-तिसके हाथ का छुआ पानी भी नहीं पीती, और सभी ओर से उसमें सुमति जाग रही है। बेटा, उसके लिए ुझे कितनी चिंता थी। उसे सुपथ पर लाकर तुमने मेरा कितना उपकार किया है, यह बताने के लिए मुझे

शब्द ढूँढ़े नहीं मिलते। भगवान तुम्हें राजराजेश्वर बनाएँ, कुलवंती लछमी बहू मिले, घर रोशन हो, धन-संपत्ति-संतान से भरा-पूरा रहे!"

फिर बातों-ही-बातों में उन्होंने कहा कि सुचरिता काफी सयानी हो गई है, उसके विवाह में पल-भर की भी देर करना ठीक नहीं है, हिंदू घर में रहती तो अब तक उसकी गोद संतान से भर गई होती। विवाह में इतनी देर कर देना कितना गलत काम हुआ है, निश्चय ही इस बारे में गोरा भी उनसे सहमत होंगे। सुचरिता के विवाह की समस्या के कारण हरिमोहनी ने बहुत दिनों तक असह्य चिंता झेलकर अंत में किसी प्रकार बड़ी खुशामद और विनती करके अपने देवर कैलाश को राज़ी करके कलकत्ता बुलाया है। जिन सब बड़ी कठिनाइयों की उन्हें आशंका थी ईश्वर की कृपा से वे सब दूर हो गई हैं, सारी बात पक्की हो गई है, वर-पक्ष एक पैसा भी नहीं लेगा और सुचरिता के पिछले इतिहास को लेकर भी कोई आपत्ति नहीं की जाएगी- बड़े कौशल से ही हरिमोहिनी इन सब कठिनाइयों का समाधन कर सकी हैं। पर अब इस मौके पर आकर-सुनकर सब हैरान होंगे- सुचरिता बिल्कुल अड़ गई है। उसके मन में क्या है हरिमोहिनी नहीं जानतीं, किसी ने उसे कुछ सिखा दिया है, या उसका मन किसी दूसरे की ओर है या जाने क्या, यह भगवान ही जानते हैं।

"लेकिन बेटा, यह मैं तुम्हें स्पष्ट ही बता दूँ, तुम्हारे योग्य वह लड़की नहीं है। गाँव-देहात में ब्याह होने से उसके बारे में कोई कुछ जान ही नहीं सकेगा, इसलिए किसी-न-किसी तरह काम चल जाएगा। किंतु तुम तो शहर में रहते हो, उससे ब्याह करोगे तो शहर के लोगों को मुँह न दिखा सकोगे।"

क्रुध्द होकर गोरा ने कहा, "आप यह सब क्या ऊटपटाँग कह रही हैं? आप से किसने कहा कि मैंने उनसे विवाह करने के लिए उन्हें कुछ समझाया-बुझाया है?"

हरिमोहिनी ने कहा, "मैं कैसे जानूँगी, बाबा! अख़बार में छप गया है, यही सुनकर तो शर्म से गड़ी जा रही हूँ।"

गोरा समझ गया कि हरानबाबू अथवा उनके गुट के किसी व्यक्ति ने इस बारे में अख़बार में कुछ लिखा होगा। मुट्ठियाँ भींचते हुए बोला, "सब झूठी बात है!"

उसकी गरज से चौंकती हुई हरिमोहिनी बोलीं, "मैं भी तो झूठ ही समझती हूँ। तब मेरा एक अनुरोध तुम्हें मानना ही होगा। तुम एक बार राधारानी के पास चलो!"

गोरा ने पूछा, **"क्यों?"**

हरिमोहिनी ने कहा, "तुम एक बार उसे समझाकर कहना!"

गोरा का मन इसी को उद्‌देश्य बनाकर उसी समय सुचरिता ने मिलने जाने को उतावला हो उठा। उसके हृदय ने कहा- चलो, आज अंतिम बार भेंट कर आऊँ। कल तुम्हारा प्रायश्चित है- उसके बाद तुम तपस्वी हो। आज की रात-भर का ही समय है- उसमें भी केवल थोड़े से क्षणों के लिए। उसमें कोई दोष नहीं होगा। होगा भी तो कल सब भस्म हो जाएगा।

थोड़ी देर चुप रहकर गोरा ने पूछा, "उन्हें क्या समझाना होगा, बताइए?"

"और कुछ नहीं- इतना ही कि हिंदू रीति के अनुसार सुचरिता- जैसी सयानी उम्र की लड़की को तुरंत विवाह कर लेना चाहिए, और हिंदू-समाज में कैलाश-जैसा सत्पात्र पा जाना सुचरिता की अवस्था की लड़की के लिए बहुत बड़ा सौभाग्य है।"

सुचरिता का मिलन और किसी से होना असम्भव है। बुध्दि और भावों की गंभीरता से परिपूर्ण सुचरिता का हृदय गोरा के सिवा किसी दूसरे व्यक्ति पर यों प्रकाशित नहीं हुआ, और न कभी किसी पर यों प्रकाशित हो सकेगा। कैसा आश्चर्यमय था वह! कितना सुंदर सुंदर! रहस्यों से भरे उस अन्तस् में उसे कैसी अनिर्वचनीय सत्ता दीख गई थी। ऐसा कब-कब दीखता है, और दुनिया में कितनों को दीखता है! दैवयोग से ही जो व्यक्ति सुचरिता को इस गहरे यथार्थ रूप में देख सका, अपनी समूची प्रकृति से अनुभव कर सका, उसी ने तो सुचरिता को पाया है। उसे और कोई कभी कैसे पा सकता है?

हरिमोहिनी ने कहा, "राधारानी क्या हमेशा क्वारी ही बैठी रह जाएगी? यह भी कभी होता है?"

यह भी तो ठीक ही है। कल गोरा तो प्रायश्चित करने जा रहा है। उसके बाद ही तो संपूर्ण पवित्र होकर ब्राह्मण होगा। त सुचरिता क्या चिरकाल तक अविवाहित ही रहेगी? यह जीवन-व्यापी भार उस पर लादने का अधिकार किसको है? स्त्री के लिए इससे बड़ा भार और क्या हो सकता है?

हरिमोहिनी न जाने क्या-क्या बोलती चली गईं, वह सब गोरा के कानों तक पहुँचा ही नहीं। वह सोचने लगा- बाबा जो इतने हठ से मुझे प्रायश्चित करने से रोक रहे हैं, उनके निषेध का क्या कोई मूल्य नहीं है? अपने लिए मैं जिस जीवन की कल्पना कर रहा हूँ वह शायद कोरी कल्पना ही है, वह मेरे लिए स्वाभाविक नहीं है। वैसा बनावटी

बोझ ढोने जाकर तो मैं पंगु हो जाऊँगा- उसके भार से दबकर मैं जीवन का कोई काम सहज ढंग से न कर सकूँगा। अभी तो देख रहा हूँ, मेरा मन आशंका में उलझ गया है! इस पत्थर को कैसे हटाऊँ! किसी तरह बाबा जान गए हैं कि मैं अपने अंतस् के भीतर ब्राह्मण नहीं हूँ, तपस्वी नहीं हूँ, शायद इसीलिए उन्होंने इतने हठ से मुझे मना किया है।

गोरा ने सोचा, उन्हीं के पास जाऊँ! आज, अभी, इसी समय जाकर ज़ोर देकर उनसे पूछूँ कि मुझमें ऐसा उन्होंने क्या देखा है, क्यों उन्होंने मुझसे कहा है कि मेरे लिए प्रायश्चित का रास्ता बंद है। अगर मुझे वह समझा सकें तो मुझे उधर से छुटकारा मिले!

हरिमोहिनी से गोरा ने कहा, "आप ज़रा रुकें, मैं अभी आता हूँ।"

दौड़ता हुआ गोरा घर के पिता वाले खंड की तरफ गया। उसका मन कहने लगा- कृष्णदयाल कोई ऐसी बात ज़रूर जानते हैं जिससे उसे तुरंत छुटकारा मिल सकता है।

साधनाश्रम का द्वार बंद था। दो-एक बार उसने खटखटाया भी, लेकिन द्वार न खुला, न किसी ने जवाब ही दिया। भीतर से धूप जलने की गंध आ रही थी। कृष्णदयाल आज सन्यासी को साथ लेकर सब द्वार बंद करके योग की किसी अत्यंत गूढ़ और दुरूह प्रणाली का अभ्यास कर रहे थे, आज रात-भर किसी को उधर प्रवेश करने का अधिकार नहीं था।

गोरा ने स्वयं से कहा-नहीं, कल नहीं, आज ही से मेरा प्रायश्चित आरंभ हो गया है। कल जो आग जलेगी उससे बड़ी आग आज जल रही है। अपने नए जीवन के शुरू में मुझे कोई बहुत बड़ी कुर्बानी देनी होगी, इसीलिए ईश्वर ने मेरे मन में इतनी बड़ी, इतनी प्रबल आकांक्षा जगा दी थी। नहीं तो ऐसी अनोखी बात क्यों हुई होती? मैं कहाँ, किस क्षेत्र में था- उन लोगों से मेरे मिलने की कोई लौकिक संभावना न थी। और ऐसे विपरीत स्वभावों का मिलन भी दुनिया में आमतौर पर कहाँ होता है! फिर इसकी तो कल्पना भी कौन कर सकता था कि उस मिलन से मुझ- जैसे उदासीन के मन में भी इतनी बड़ी, इतनी दुर्दम आकांक्षा जाग उठेगी! ठीक आज के लिए ही इस आकांक्षा की मुझे ज़रूरत थी- आज तक मैंने देश को जो कुछ दिया है वह सब बड़ी सरलता से ही दे सका हूँ- ऐसा कोई दावा नहीं करना पड़ा जिसे देते मुझे कोई कठिनाई हुई हो। मैं यह सोच ही नहीं पाता था कि देश के लिए किसी चीज़ का त्याग

करने में लोग कंजूसी क्यों करते हैं। लेकिन महायज्ञ ऐसे सहज दान से संपन्न नहीं होता। उसके लिए दु:ख ही चाहिए, धमनी काटकर रक्त-दान करके ही मुझे नए जीवन में नया जन्म लेना होगा। लोगों के सामने कल सबेरे मेरा लौकिक प्रायश्चित होगा, उससे एक रात पहले ही मेरे जीवन-विधाता आकर मेरा द्वार खटखटा रहे हैं- अपने अंतर के भीतर ही अंतरतम प्रायश्चित किए बिना कल मैं क्या शुध्दि ग्रहण करूँगा? जो मेरे लिए सबसे कठिन दान है, वही आज संपूर्णतया देवता को अर्पित करके ही मैं सच्चे और पवित्र रूप में नि:स्वार्थ हो सकूँगा- तभी मैं ब्राह्मण हूँगा।

गोरा के हरिमोहनी के पास लौटते ही उन्होंने कहा, "बेटा, तुम एक बार मेरे साथ चलो। तुम्हारे जाकर अपने मुँह से एक बात कह देने से ही सब ठीक हो जाएगा।"

गोरा ने कहा**, "**मैं क्यों जाऊँ**-** मेरा उनसे क्या संबंध है**?** कुछ नहीं।**"**

हरिमोहिनी बोलीं**, "**वह जो तुम्हें देवता की तरह मानती हैं**,** अपना गुरु समझती है**?"**

जैसे एक लाल सुलगती हुई सलाख गोरा के हृदय को बेध गई। उसने कहा, "मैं तो जाने की कोई ज़रूरत नहीं देखता। उनसे अब और भेंट होने की कोई संभावना नहीं है।"

भीतर-ही-भीतर खुश होते हुए हरिमोहिनी ने कहा, "सो तो ठीक ही है। इतनी सयानी लड़की से मिलना-जुलना तो अच्छा नहीं है। लेकिन बेटा,आज का मेरा यह काम किए बिना तो तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। इसके बाद कभी तुम्हें बुलाऊ तो कहना!"

बड़ ज़ोर से गोरा ने सिर हिला दिया। अब नहीं, किसी प्रकार नहीं। वह सब खत्म हो चुका। वह देवता के आगे सब न्यौछावर कर चुका है। अब अपनी शुचिता पर कोई धब्बा नहीं लगने देगा। वह सुचरिता से मिलने नहीं जाएगा।

जब हरिमोहिनी ने समझ लिया कि अपनी बात से गोरा टलने वाला नहीं है, तब उन्होंने कहा, "यदि बिल्कुल ही नहीं जा सकते तो बेटा, एक उपाय करो। एक चिट्ठी लिख दो!"

गोरा ने फिर सिर हिलाया। वह नहीं हो सकेगा-चिट्ठी-विट्ठी भी वह नहीं लिखेगा।

हरिमोहिनी ने कहा, अच्छा, तब मुझे ही दो लाइन लिख दो। तुम तो सब शास्त्र जानते हो, मैं तुमसे विधान लेने आई हूँ।"

हरिमोहिनी ने फिर कहा, "यही कि हिंदू घर की लड़की के लिए उपयुक्त समय पर विवाह करके गृहस्थ-धर्म पालन करना ही सबसे बड़ा धर्म है कि नहीं।"

थोड़ी देर चुप रहकर गोरा ने कहा, "देखिए, इन सब झंझटों में मुझे न फँसाइए। मैं विधान दे सकने वाला पंडित नहीं हूँ।"

हरिमोहिनी ने तब कुछ तीखेपन के साथ कहा, "तब फिर अपने मन की भीतरी इच्छा स्पर्धा ही कहो न! पहले तुम्हीं ने तो फंदा डाला, अब जब उसे खोलने की बात आई तो कहते हो कि मुझे न फँसाइए! इसका क्या मतलब होता है? वास्तव में तुम चाहते ही नहीं कि उसका मन साफ हो जाए।"

यदि और कोई समय होता तो गोरा गुस्से में आग-बबूला हो उठता- यह सच्चा अभियोग वह सह न सकता। लेकिन आज से उसका प्रायश्चित आरंभ हो गया था, उसने गुस्सा नहीं किया। अपने ही मन में डूबकर उसने पहचाना कि हरिमोहिनी सच्ची बात ही कह रही है। सुचरिता के साथ बड़ा बंधन काट देने के लिए तो वह निर्मम हो उठा है, लेकन एक बहुत बारीक सूत्र वह न दीखने का बहाना करके बनाए रखना भी चाहता है। सुचरिता के साथ अपने संबंध को एकबारगी छोड़ देने के लिए वह अब भी तैयार नहीं है।

लेकिन अब यह कंजूसी छोड़नी होगी। एक साथ से दान करे दूसरे हाथ से पकड़े रहना नहीं चल सकता!

कागज़ निकालकर गोरा ने बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा, "विवाह ही नारी जीवन की साधना का मार्ग है, गृहस्थ-धर्म ही उसका प्रथम मुख्य धर्म है। विवाह इच्छा पूरी करने के लिए नहीं, कल्याण-साधना के लिए है। गृहस्थी में सुख हो अथवा दु:ख, पूरे मन से उसका वरण करती हुई नारी सती-साध्वी रहकर धर्म को घर में मूर्तिमान किए रहे, यही उसका व्रत है।"

हरिमोहिनी ने कहा, "इसी के साथ यदि हमारे कैलाश के बारे में भी थोड़ा-सा लिख देते तो बड़ा अच्छा होता।"

गोरा ने कहा, "नहीं, उन्हें तो मैं जानता ही नहीं, उनके बारे में नहीं लिख सकूँगा।"

कागज़ हरिमोहिनी ने सावधानी से तह करके आँचल के छोर में बाँध लिया ओर अपने घर लौट गईं। अब भी सुचरिता आनंदमई के पास ललिता के घर में ही थी।

वहाँ बातचीत की सहूलयत नहीं होगी, और ललिता या आनंदमई से विरोधी बात सुनकर सुचरिता के मन में दुविधा ही हो सकती है, इस आशंका से उन्होनें सुचरिता को कहला भेजा कि अगले दिन दोपहर को आकर वह उन्हीं के साथ भोजन करे, बहुत ज़रूरी बात है- वह चाहे तो तीसरे पहर फिर वापिस लौट जा सकेगी।

अगले दिन दोपहर को मन कड़ा करके सुचरिता आई। वह जानती थी कि मौसी फिर विवाह की बात उठाएंगी। उसने निश्चय कर लिया था कि आज उन्हें कड़ा उत्तर देकर सारी बात को अंतिम रूप से समाप्त कर देगी।

सुचरिता के भोजन कर लेने पर हरिमोहिनी ने कहा, "कल संध्या समय मैं तुम्हारे गुरु के पास गई थी।"

भीतर-ही-भीतर सुचरिता घबरा उठी। क्या फिर उसकी बात लेकर मौसी उनका अपमान कर आई हैं?

हरिमोहिनी ने कहा, "डरो मत राधारानी, मैं उनसे झगड़ा करने नहीं गई थी। अकेली थी, सो मैंने सोचा, चलकर, उनसे दो-एक अच्छी-अच्छी बातें सुन आऊँ। बातों-बातो में तुम्हारी बात उठी। तो देखा, उनकी भी वही राय हैं लड़की अधिक दिन क्वारी रहे, इसे वह भी ठीक नहीं समझते। वह कहते हैं, शास्त्रों के अनुसार वह अधर्म हैं वह सब साहबों के यहाँ चलता है, हिंदुओं के घर नहीं। मैंने अपने कैलाश की बात भी पूरी बता दी। देखती हूँ, वह सचमुच ज्ञानी आदमी हैं"

सुचरिता लज्जा और पीड़ा से तिलमिला उठी। हरिमोहिनी ने कहा, "तुम तो उन्हें गुरु मानती हो। उनकी बात तो माननी होगी।"

सुचरिता चुप रही। हरिमोहिनी कहती गईं, "मैंने उनसे कहा, 'बेटा, तुम एक बार स्वयं आकर उसे समझा दो, हमारी बात तो वह मानती नहीं।"वह बोले, 'नहीं, अब मेरा उससे मिलना ठीक नहीं होगा, हमारे हिंदू-समाज में वह मना है।' मैंने पूछा, 'तो फिर क्या उपाय किया जाय?' तब उन्होंने अपने हाथ से ही मुझे लिखकर दे दिया। यह देखो न!"

कहते-कहते हरिमोहिनी ने धीरे-धीरे ऑचल से कागज़ खोलकर उसकी तह खोलकर उसे सुचरिता के सामने कर दिया।

सुचरिता ने पढ़ा। उसका दम घुटने लगा, प्रतिमा-सी निश्चेष्ट होकर वह बैठी रह गई।

उस इबारत में ऐसा कुछ नहीं था जो नया या असंगत हो। ऐसा भी नहीं था कि सुचरिता की राय उन बातों से न मिलती हो। लेकिन हरमोहिनी के हाथ खास तौर से उसके लिए यह लिख भेजने का जो अर्थ होता है उसी से सुचरिता को बड़ा दु:ख हो रहा था। गोरा की ओर से ऐसा आदेश आज क्यों? यह सही है कि सुचरिता का समय कभी आएगा ही, उसे भी एक दिन विवाह करना ही होगा- लेकिन उसके लिए गोरा को इतनी जल्दी मचाने की क्या ज़रूरत है? उस संबंध में जो कुछ गोरा को करना है वह क्या समाप्त हो गया? गोरा के कर्तव्य में उसने क्या कोई बाधा पहुँचाई है या उसके जीवनप-पथ में कोई रोड़े अटकाए हैं? क्या गोरा के पास उसे दान करने के लिए या उससे चाहने को और कुछ नहीं रह गया है? किंतु वह तो ऐसा नहीं सोचती थी, वह तो अब भी राह देख रही थी। अपने भीतर के इस दु:सह दु:ख से लड़ने के लिए सुचरिता प्राणपण से कोशिश करने लगी, लेकिन उसे कहीं से कोई सांत्वना न मिली।

हरिमोहिनी ने सोचने के लिए सुचरिता को काफी समय दिया था। बल्कि अपने दैनिक नियम के अनुसार उन्होंने एक नींद भी ले ली। नींद खुलने पर सुचरिता के कमरे में आकर उन्होंने देखा, वह अब भी गुमसुम ज्यों-की-त्यों बैठी हुई है।

उन्होंने कहा, "राधू, इतना क्या सोच रही है भला! इसमें इतना सोचने की बात ही कौन-सी है? गौरमोहन बाबू ने कुछ गलत लिखा है क्या?"

शांत स्वर में सुचरिता ने कहा, "नहीं, उन्होने ठीक ही लिखा है।"

अत्यंत आश्वस्त होकर हरिमोहिनी कह उठीं, "तो फिर और देर करके क्या होगा, बिटिया?"

सुचरिता ने कहा, "नहीं, देर नहीं करना चाहती। एक बार मैं बाबा के घर जाऊँगी।"

हरिमोहिनी ने कहा, "देख राधू, तुम्हारे बाबा तो यह कभी नहीं चाहेंगे कि हिंदू-समाज में तुम्हारा विवाह हो। लेकिन तुम्हारे जो गुरु हैं उन्होने तो.... "

अधीर होकर सुचरिता ने कहा, "मौसी, बार-बार क्यों तुम वही एक बात दोहरा रही हो! मैं बाबा से विवाह के बारे में कोई बात करने नहीं जा रही हूँ। मैं तो यों ही एक बार उनसे मिलना चाहती हूँ।"

परेशबाबू का सानिध्य ही सुचरिता के लिए एकमात्र आसरा रह गया था। उनके घर जाकर सुचरिता ने देखा, वह एक संदूक में कपड़े भर रहे हैं।

सुचरिता ने पूछा, 'यह क्या हो रहा है, बाबा?"

ज़रा हँसकर परेशबाबू बोले, "बेटी, मैं शिमला पहाड़ की सैर करने जा रहा हूँ, कल सबेरे की गाड़ी से चलूँगा।"

परेशबाबू की इस हँसी में एक विप्लव का इतिहास छिपा हुआ है, यह समझते सुचरिता को देर न लगी। घर में पत्नी और कन्या, और बाहर उनके बंधु-बांधव-परेशबाबू को ज़रा-सी भी शांति का अवकाश नहीं दे रहे थे। वह कुछ दिन के लिए कहीं और न चले गए तो उन्हें केंद्र बनाकर घर में एक-न-एक तूफान उठता ही रहेगा। कल वह बाहर जा रहे हैं, फिर भी आज घर का कोई भी सदस्य उनके कपड़े सँवार देने नहीं आया है, यह सब उन्हें स्वयं करना पड़ रहा है, यह देखकर सुचरिता के मन को ठेस पहुँची। परेशबाबू को रोककर पहले तो उसने बक्स को बिल्कुल खाली कर दिया,फिर एक-एक कपड़े को कुशल हाथों से यत्नपूर्वक फिर से तह करके बक्से में सजाने लगी। उनके नित्य पढ़ने की पुस्तकों को उसने ऐसे सँभालकर रख दिया कि हिलने-डुलने से कोई हानि न हो। सामान सजाते-सजाते सुचरिता ने धीरे से पूछा, "बाबा, क्या तुम अकेले ही जाओगे?"

सुचतरिता के इस प्रश्न में वेदना का आभास पाकर परेशबाबू ने कहा, "उसमें मुझे कोई कष्ट नहीं होगा, राधो!"

सुचरिता ने कहा, "नहीं बाबा, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

परेशबाबू सुचरिता के चेहरे की ओर देखने लगे। सुचरिता ने कहा, "बाबा मैं तुम्हें ज़रा-भी तंग नहीं करूँगी।"

परेशबाबू बोले, "ऐसा क्यों कहती हो- तुमने मुझे कब तंग किया है, बेटी?"

सुचरिता ने कहा, "तुम्हारे पास रहे बिना मेरा उध्दार नहीं होगा, बाबा! बहुत-सी बातें तो मेरी समझ में ही नहीं आतीं- तुम नहीं समझा दोगे तो मैं पार न पा सकूँगी। तुम

जो मुझे अपनी बुध्दि पर भरोसा करने को कहते हो, उतनी मेरी बुध्दि ही नहीं है, और उतनी ताकत भी मेरे मन में नहीं है। तुम मुझे अपने साथ ले चलो, बाबा!"

कहते-कहते सुचरिता परेशबाबू की ओर पीठ फेरकर बक्स पर झुककर कपड़े इधर-उधर करने लगी। उसकी ऑंखों से टप-टप ऑंसू गिरने लगे।

जब गोरा ने अपना लिखा कागज़ हरिमोहिनी के हाथों में दे दिया, तब उसे ऐसा लगा कि उसने सुचरिता के संबंध में अपना त्याग-पत्र लिख दिया है। किंतु लिख देने से ही तत्क्षण काम समाप्त नहीं हो जाता! उसके मन ने तो यह अर्ज़ी बिल्कुल नामंजूर कर दी। उस अर्ज़ी पर केवल गोरा की इच्छा शक्ति ने ज़बरदस्ती कलम पकड़कर नाम लिख दिया था, उसके मन के हस्ताक्षर तो उस पर नहीं हुए थे। इसलिए उसका मन उससे मुक्त था। बल्कि इतना मुक्त उसी शाम को वह गोरा को सुचरिता के घर की ओर दौड़ाए दे रहा था। लेकिन उसी समय गिरजाघर की घड़ी ने दस बजाए और गोरा को खयाल आया कि यह किसी से मिलने जाने का उचित समय नहीं है। फिर तो लगभग सारी रात गोरा गिरजाघर के घंटे ही गिनता रहां गंगा-तट के बगीचे वाले घर में उस रात उसका जाना नहीं हो सका। उसने कहला भेजा कि वह अगले दिन सबेरे ही पहुँच जाएगा।

सबरे-सबेरे ही वह पहुँच गया। लेकिन जैसा निर्मल और दृढ़ मन लेकर उसने प्रायश्चित करने का निश्चय किया था, वैसी अवस्था उसके मन की अब कहाँ थी!

अनेक पंडित और अध्यापक आ गए थे। और भी अनेकों के आने की संभावना थी। गोरा ने सभी से मिलकर उनकी अभ्यर्थना की। उन्होंने भी सनातन धर्म के प्रति गोरा की अडिग निष्ठा की चर्चा करे बार-बार उसे साधुवाद दिया।

धीरे-धीरे बगीचा जन-कोलाहल से गूँज गया। देखभाल करता हुआ गोरा चारों ओर घूमता रहा। लेकिन सारे कोलाहल और काम की व्यस्तता के बीच भी गोरा के हृदय की गहराई में रह-रहकर एक ही बात घुमड़ रही थी- कोई जैसे कह रहा था, 'तुमने अन्याय किया है, तुमने अन्याय किया है।'अन्याय ठीक कहाँ हुआ है, इस पर सोच-विचार करने का समय तब नहीं था, लेकिन वह हृदय की गहराई से आते हुए इस स्वर को किसी प्रकार चुप नहीं करा सका। प्रायश्चित-यज्ञ के लंबे-चौड़े आयोजन के बीच उसके हृदय में ही बसा कोई घर का भेदी उसके विरुध्द गवाही दे रहा था, कह रहा था, 'अन्याय तो बना ही रह गया।' यह अन्याय किसी नियम में त्रुटि नहीं थी, मंत्र में भूल नहीं थी, शास्त्र की विरुध्दता भी नहीं थी, यह अन्याय उसकी प्रकृति के

भीतर हो रहा था- इसीलिए गोरा का समूचा अंत:करण इस अनुष्ठान के विरुध्द छटपटा रहा था।

नियत समय हो चला। चारों ओर बाँस की बल्लियाँ गाड़कर ऊपर चंदोवा तानकर पंडाल तैयार किया जा चुका था। गंगा-स्नान करके गोरा कपड़े बदल रहा था कि एकाएक जनता में कुछ हलचल जान पड़ी। मानो एक उद्वेग चारों ओर फैला पड़ा रहा था। अंत में घबराया हुआ चेहरा लिए अविनाश ने आकर कहा, "आपके घर से खबर आई है, कृष्णदयाल बाबू के मुँह से रक्त जा रहा है- आपको तुरंत ले आने के लिए उनहोंने गाड़ी के साथ आदमी भेजा है।"

गोरा फौरन चल दिया। अविनाश भी उसके साथ जाने को तैयार हुआ तो गोरा ने कहा, "नहीं, तुम यहाँ सबकी देखभाल करो- तुम्हारे चले जाने से कैसे होगा?"

कृष्णदयाल के कमरे में पहुँचकर गोरा ने देखा, वह बिस्तर पर लेटे हुए हैं और आनंदमई उनके पैरों के पास बैठी पाँव सहला रही हैं। घबराए हुए-से गोरा ने दोनों के चेहरों की ओर देखा। इशारे से कृष्णदयाल ने उसे पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठने को कहा। गोरा बैठ गया।

माँ की ओर उन्मुख होकर उसने पूछा, "अब कैसे हैं?"

आनंदमई ने कहा, "अब तो कुछ ठीक हैं। साहब डॉक्टर को बुला भेजा है।"

कमरे में शशिमुखी और एक नौकर भी था। हाथ हिलाकर कृष्णदयाल ने उन्हें बाहर भेज दिया। जब सब बाहर चले गए तब उन्होंने चुपचाप एक बार आनंदमई के चेहरे की ओर देखा ओर फिर मृदु स्वर में गोरा से कहा, "मेरा अंत समय आ गया है। अब तक तुमसे जो छिपा रखा था वह आज तुम्हें बताए बिना मुझे मुक्ति न मिलेगी।"

गोरा का चेहरा "गोरा, तब मैं कुछ नहीं मानता था, इसीलिए मैंने इतनी बड़ी गलती की। फिर उसके बाद गलती सुधारने का उपाय नहीं था।"

इतना कहकर वह फिर चुप हो गए। गोरा भी कुछ न पूछकर निश्चल बैठा रहा।

कृष्णदयाल फिर बोले, "मैंने सोचा था तुम्हें बताने की कोई ज़रूरत नहीं होगी, जैसे चलता आया है वैसे ही चला जाएगा। लेकिन देखता हूँ, वैसा नहीं हो सकेगा। मेरी मृत्यु के बाद मेरा श्राध्द तुम कैसे करोगे?"

मानो कृष्णदयाल ऐसी गड़बड़ की आशंका से ही सिहर उठे। असल बात क्या है यह जानने के लिए गोरा अधीर हो उठा। आनंदमई की ओर देखकर वह बोला, "माँ, तुम बताओ, बात क्या है, मुझे श्राध्द करने का अधिकार नहीं है?"

अब तक आनंदमई सिर झुकाए हुए स्तब्ध बैठी थीं। गोरा का प्रश्न सुनकर सिर उठाकर उन्होंने गोरा के चेहरे पर नज़र टिकाते हुए कहा, "नहीं बेटा!"

चकित होकर गोरा ने पूछा**, "**मैं उनका पुत्र नहीं**?"**

आनंदमई ने कहा**, "**नहीं।**"**

ज्वालामुखी से निकले लावे की तरह गोरा के मुँह से निकला**, "**माँ**,** तुम मेरी माँ नहीं हो**?"**

आनंदमई की छाती फटने लगी। बिना ऑसुओं के रोते हुए स्वर में उन्होंने कहा, "बेटा, गोरा, तू मुझ पुत्रहीन का पुत्र है, तू तो अपने पेट के लड़के से भी कहीं अधिक है, बेटा!"

तब गोरा ने कृष्णदयाल के चेहरे की ओर देखते हुए पूछा**, "**तब मुझे तुम लोगों ने कहाँ पाया**?"**

कृष्णदयाल ने कहा, "तब ग़दर था। हम लोग इटावा में रहते थे। तुम्हारी माँ ने सिपाहियों के डर से भागकर रात को हमारे यहाँ आकर शरण ली थी। तुम्हारे बाप उससे पहले दिन ही लड़ाई में मारे गए थे। उनका नाम था"

गरजकर गोरा ने कहा**, "**रहने दीजिए उनका नाम**!** मैं नहीं जानना चाहता।**"**

गोरा की उत्तेजना से चौंककर कृष्णदयाल रुक गए। फिर बोले, "वह आयरिश-मैन थे। उसी रात तुम्हें जन्म देकर तुम्हारी माँ मर गईं। तब से तुम्हारा पालन-पोषण हमारे ही घर हुआ।"

गोरा का सारा जीवन क्षण-भर में ही उसके लिए एक बड़ा अजीब सपना-सा हो गया। शैशव से इतने बरसों तक जिस भित्ति पर उसका जीवन खड़ा रहा था वह एकाएक विलीन हो गई। वह क्या है, कहाँ है, वह कुछ भी न समझ सका। जैसे उसके पीछे अतीत नाम की कोई चीज़ ही नहीं रही,और उसके सामने इतने दिनों से जो स्पष्ट भविष्य उसका एकमेव लक्ष्य रहा था वह भी एकाएक लुप्त हो गया। जैसे वह इसी

एक क्षण की कमल की पंखुड़ी में ओस की बूँद-सा काँप रहा हो। उसकी न माँ है, न बाप है, न देश है, न जाति है, न नाम, न गोत्र, न देवता- जैसे वह एक संपूर्ण नकार है। वह किसे पकड़े, क्या करे, फिर कहाँ से आरंभ करे, किधर अपना लक्ष्य स्थिर करे, फिर दिन-रात क्रम से अपने काम के उपकरण कहाँ से कैसे जुटाए? इस दिशाहीन अद्भुत शून्य के बीच में गोरा निर्वाक् बैठा रह गया। उसका चेहरा देखकर और किसी को भी कुछ कहने का हौसला नहीं हुआ।

इसी समय परिवार के बंगाली चिकित्सक के साथ अंग्रेज डॉक्टर भी आ पहुँचा। डॉक्टर ने जैसे रोगी की तरफ देखा वैसे ही गोरा की तरफ देखे बिना भी न रह सका। सोचने लगा, 'यह आदमी कौन है!" गोरा के माथे पर उस समय भी गंगा की मिट्टी का तिलक था, और स्नान करके उसने जो रेशमी कपड़े पहने थे अब भी वही पहने था। शरीर पर कुर्ता नहीं था, उत्तरीय के बीच में से उसकी विशाल देह दीख रही थी।

पहले कभी होता तो गोरा के मन में अंग्रेज़ डॉक्टर को देखते ही अपने-आप एक विद्वेश का भाव जाग उठता। लेकिन अब जितनी देर डॉक्टर रोगी को देख रहा था गोरा एक विशेष उत्सुकता से उसकी ओर ताकता रहा। मन-ही-मन अपने-आप से वह बार-बार पूछता रहा- तो यहाँ पर मेरा सबसे अधिक अपना यही आदमी है?

जाँच के बाद पूछताछ कर चुकने पर डॉक्टर ने कहा, "नहीं, चिंता के तो कोई लक्षण नहीं देखता। नाड़ी अभी ठीक ही है और शरीर-यंत्र में भी कोई विकार नहीं आया है। जो भी तकलीफ हुई है थोड़ी सावधानी बरतने से दुबारा नहीं होगी।"

डॉक्टर के विदा लेकर चले जाने पर गोरा भी बिना कुछ कहे कुर्सी से उठकर जाने लगा।

आनंदमई डॉक्टर के आने के साथ कमरे में चली गई थीं, तब दौड़कर गोरा का हाथ पकड़ती हुई बोलीं, "बेटा गोरा, मुझ पर गुस्सा मत होना,नहीं तो मैं जी नहीं सकूँगी!"

गोरा ने कहा**, "**तब तक तुमने मुझे बताया क्यों नहीं**?** बता देतीं तो क्या बुराई थी**?"**

सारा अपराध आनंदमई ने अपने ऊपर लेते हुए कहा, "बेटा, तुझे कहीं खो न बैठूँ इसी डर से मैंने इतना पाप किया है। फिर भी अगर वही हो जाय, तू आज मुझे छोड़कर चला जाय, तो मैं किसी को दोष नहीं दे सकूँगी- लेकिन मेरे लिए वह मृत्यु-दंड होगा, बेटा!"

गोरा ने केवल इतना कहा, "माँ!"

उसके मुँह से यह संबोधन सुनकर आनंदमई के रुके हुए ऑसू फूट पड़े।

गोरा ने कहा, "माँ, अब मैं एक बार ज़रा परेशबाबू के घर हो आऊँ।"

आनंदमई की छाती का बोझ कुछ हल्का हो गया। उन्होंने कहा, "हो आओ, बेटा!"

उनके जल्दी मरने की कोई आशंका नहीं है, फिर भी सारी बात गोरा के सामने प्रकट हो गई इससे कृष्णदयाल बहुत घबरा उठे। गोरा से बोले, "देखो गोरा, यह बात किसी को बताने की कोई आवश्यकता नहीं है। बस, तुम्हीं ज़रा समझ-बूझकर सँभलकर चलो तो जैसा अब तक चल रहा था वैसा ही चलता रहेगा, किसी को भनक भी नहीं पड़ेगी।"

कोई उत्तर दिए बिना गोरा बाहर चला गया। उसका कृष्णदयाल से कोई संबंध नहीं है, यह स्मरण करके उसे तसल्ली ही हुई।

महिम के लिए एकाएक दफ्तर न जाकर घर ही रह जाना संभव न था, इसलिए डॉक्टर आदि का सब प्रबंध करके एक बार वह साहब को कहकर छुट्टी लेने के लिए दफ्तर गए थे। जब गोरा घर से निकल रहा था तभी वह लौटकर आ पहुँचे। गोरा को देखकर बोले, "गोरा, तुम कहाँ जा रहे हो?"

गोरा ने कहा, "ख़बर अच्छी है। डॉक्टर आया था। कह गया है कि कोई चिंता की बात नहीं है।

अत्यंत आश्वस्त होकर महिम ने का, "जान बची। परसों ही का दिन है, उसी दिन शशिमुखी का ब्याह कर दूँगा। गोरा, तुम्हें थोड़ी दौड़-धूप करनी होगी। और देखो, विनय को पहले से खबरदार कर देना, की उस दिन आ ही न टपके। अविनाश पक्का हिंदू है, उसने ख़ास तौर से कहा है कि उसके ब्याह में वैसे लोग नहीं आने चाहिए। और भी एक बात तुमसे कह रखूँ भाई, उस दिन अपने ऑफिस के बड़े साहबों को भी न्यौता दे रहा हूँ, तुम कहीं उन्हें मारकर भगा मत देना। और कुछ नहीं, सिर्फ ज़रा-सा सिर हिलाकर, 'गुड ईवनिंग सर' कह देना-उतने से तुम्हारे हिंदू-शास्त्र का कुछ बिगड़ नहीं जाएगा- बल्कि तुम चाहे पंडितों से सलाह ले लेना। समझे भाई? वे लोग राजी की जात हैं,

महिम की बात का कोई जवाब न देकर गोरा आगे बढ़ गया।

जिस समय सुचरिता अपने आँसू छिपाने के लिए बक्स पर झुककर कपड़े सँवार रही थीं, उसी समय सूचना मिली कि गौरमोहन बाबू आए हैं।

जल्दी से आँखें पोंछकर सुचरिता अपने काम छोड़कर उठ खड़ी हुई। इतने में ही गोरा ने कमरे में प्रवेश किया।

गोरा के माथे पर तिलक अभी भी लगा हुआ है, और कपड़े भी उसने वही पहन रखे हैं, इस ओर उसका ध्यान ही न गया था। ऐसे वेश में कोई किसी के घर मिलने नहीं जाता। एकाएक सुचरिता का उस दिन की बात याद आ गई जिस दिन गोरा को उसने पहले-पहल देखा था। सुचरिता जानती थी, उस दिन गोरा खास तौर से युध्द-वेश में आया था। तो क्या आज भी यह युध्द-सज्जा है!

गोरा ने आते ही भूमि पर माथा टेककर परेशबाबू को प्रणाम किया और उनकी चरण-रज ली। हड़बड़ाकर परेशबाबू ने उसे उठाते हुए कहा, "आओ-आओ बेटा, बैठो?"

गोरा बोल उठा, "परेशबाबू, मुझ पर अब कोई बंधन नहीं है।"

अचरज में आकर परेशबाबू ने कहा, "कैसा बंधन?"

गोरा ने कहा, "मैं हिंदू नहीं हूँ।"

परेशबाबू ने दोहराया, "हिंदू नहीं हो?"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैं हिंदू नहीं हूँ। आज ही मुझे पता चला है, मैं म्यूटिनी के समय पाया गया था, मेरा बाप आयरिशमैन था। आज भारतवर्ष के उत्तर से दक्षिण तक सब देव-मंदिरों के द्वार मेरे लिए बंद हो गए हैं- सारे देश में आज किसी समाज में किसी पंगत में मेरे बैठेन के लिए स्थान नहीं है।"

परेशबाबू और सुचरिता सन्नाटे में आकर बैठे रह गए। क्या कहें, यह परेशबाबू सोच ही नहीं सके।

गोरा ने कहा, "आज मैं मुक्त हूँ, परेशबाबू! अब मुझे यह स्मरण नहीं है कि मैं पतित हो जाऊँगा या व्रात्य हो जाऊँगा। अब पग-पग पर मुझे धरती की ओर देखते हुए अपनी शुचिता की शुचिता की रक्षा करते हुए नहीं चलना होगा।"

सुचरिता एकटक गोरा के तमतमाए हुए चेहरे की ओर देखती रही।

गोरा कहता गया, "परेशबाबू, इतने दिनों से मैं भारतवर्ष को पाने के लिए अपने प्राण लगाकर साधना करता रहा, कहीं-न-कहीं बाधा होती रही,मैं उस बाधा के साथ अपनी श्रध्दा का समझौता कराने के लिए दिन-रात जीवन-भर कोशिश करता रहा- श्रध्दा की नींव को मज़बूत करने की कोशिश में मैं और कोई काम ही नहीं कर सका, वही मेरी एकमात्र साधना थी। इसीलिए वास्तविक भारतवर्ष से आँखें मिलने पर उसकी सच्ची सेवा करने से मैं बार-बार डरकर लौटता ही रहा हूँ। मैंने एक निष्कंटक निर्विकार भारतवर्ष रचकर उसके अभेद्य दुर्ग के भीतर अपनी भक्ति को सुरक्षित कर लेने के लिए अब तक क्या-क्या लड़ाईयाँ नहीं लड़ीं! लेकिन आज तक की मेरी कल्पना का वह दुर्ग क्षण-भर में स्वप्न की तरह उड़ गया है। एकाएक छुटकारा पाकर मैं एक बहुत बड़े सत्य के बीच आ गिरा हूँ। समूचे भारतवर्ष का सुख-दुःख, अच्छा-बुरा, ज्ञान-अज्ञान सब बिल्कुल मेरे हृदय के पास पहुँच गया है। आज मैं सचमुच सेवा का अधिकारी हुआ हूँ, सच्चा कर्म-क्षेत्र मेरे सामने आ गया है- वह मेरी कल्पना का क्षेत्र नहीं है, वह बाहर की इस पच्चीस करोड़ जनता के सच्चे कल्याण का क्षेत्र है।"

गोरा की इस नई अनुभूति के प्रबल उत्साह की धारा ने जैसे परेशबाबू को भी आंदोलित कर दिया। वह और बैठे न रह सके, कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए।

गोरा बोला, "परेशबाबू, मेरी बात आप ठीक से समझ रहे हैं न? मैं दिन-रात जो होना चाह रहा था पर हो नहीं पा रहा था, आज मैं वही हो गया हूँ। आज मैं सारे भारतवर्ष का हूँ। मेरे भीतर हिंदू, मुसलमान, ख्रिस्तान किसी समाज के प्रति कोई विरोध नहीं है। आज के इस भारतवर्ष में सबकी जात मेरी जात है, सबका अन्न मेरा अन्न है। देखिए, बंगाल के अनेक ज़िलों में मैं घूमा हूँ, बड़े नीच घरों में भी मैंने आतिथ्य ग्रहण किया है- आप यह न समझें कि मैं मात्र शहरों की सभाओं में वक्तृता झाड़ता रहा हूँ- लेकिन कभी किसी तरह सबके बराबर होकर होकर नहीं बैठ सका। अब तक अपने साथ में बराबर एक अदृश्य व्यवधान लिए हुए ही घूमता रहा हूँ, उसे किसी तरह पार नहीं कर सका। इसीलिए मेरे मन के भीतर एक बड़ा शून्य था। इसी सूनेपन को मैं तरह-तरह से अस्वीकार करने की ही चेष्टा करता रहा, बल्कि उस सूनेपन को ही तरह-तरह की नक्काशी करके और भी सुंदर बनाने का प्रयत्न करता रहा। क्योंकि मैं भारतवर्ष को प्राणों से भी प्यारा समझता था, इसलिए उसके जितने अंश को मैं देख पाता था उस अंश में कहीं किसी कमी की गुंजाइश मुझे सहन नहीं होती थी। आज नक्काशी करने की उस व्यर्थ चेष्टा से छुट्टी पाकर मैं फिर से जी उठा हूँ, परेशबाबू!"

परेशबाबू ने कहा, "जब हम सत्य को पा लेते हैं तब वह अपने सारे अभाव और अपूर्णता के बावजूद हमारी आत्मा को तृप्ति देता है, तब उसे झूठे उपकरणों से सजाने की इच्छा तक नहीं होती।"

गोरा ने कहा, "देखिए परेशबाबू, मैंने कल रात को ईश्वर से प्रार्थना की थी कि आज सबेरे मुझे नया जीवन प्राप्त हो- बचपन से अब तक जो कुछ झूठ या जो कुछ अपवित्र मुझे घेरे रहा हो आज वह सब नष्ट हो जाए और मुझे नया जीवन मिले। जो कल्पना करके मैंने प्रार्थना की थी उसकी ओर ईश्वर ने ध्यान नहीं दिया- उन्होंने एकाएक अपना ही सत्य अचानक मेरे हाथ में देकर मुझे चौंका दिया है। वह एकाएक मेरी सारी अपवित्रता को यों समूला मिटा देंगे, यह मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता था। आज मैं ऐसा पवित्र हो गया हूँ कि चांडाल के घर भी अब अपवित्रता का भय न रहा। परेशबाबू, आज सबेरे ही बिल्कुल खुले मन से मैं ठीक भारतवर्ष की गोद में आ बैठा हूँ- माँ की गोद किसे कहते हैं, यह इतने दिन बाद आज मैं पूरी तरह अनुभव कर सका हूँ।"

परेशबाबू बोले, "गौर, अपनी माँ की गोद में तुम्हें जो अधिकार मिला है उसमें हमें भी शामिल कर लो।"

गोरा ने कहा, "आज मुक्ति पाकर सबसे पहले मैं आपके पास ही क्यों आया हूँ जानते हैं?"

"क्यों?"

गोरा ने कहा, "इस मुक्ति का मंत्र आपके पास ही है। इसीलिए आज आपको किसी समाज में स्थान नहीं मिल रहा है। आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। आज आप मुझे उसी देवता का मंत्र दीजिए जो हिंदू-मुसलमान, ख्रिस्तान-ब्रह्म सबका है, जिसके मंदिर का द्वार किसी जाति, किसी व्यक्ति के लिए भी बंद नहीं होता- जो सिर्फ हिंदू का देवता नहीं है बल्कि सारे भारतवर्ष का देवता है।"

परेशबाबू के चेहरे पर भक्ति की एक गहरी मधुर दीप्ति छा गई, ऑंखें झुककाकर वह थोड़ी देर चुप खड़ी रहे।

इतनी देर बाद अब गोरा सुचरिता की ओर मुड़ा। वह अपनी कुर्सी पर स्तब्ध बैठी थी।

हँसकर गोरा ने कहा, "सुचरिता, अब मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। मैं तुमसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरा हाथ पकड़कर तुम मुझे इन गुरु के पास ले चलो!"

यह कहते-कहते अपना दाहिना हाथ गोरा ने सुचरिता की ओर बढ़ा दिया। सुचरिता ने खड़े होकर अपना हाथ गोरा के हाथ में रख दिया। तब गोरा ने सुचरिता के साथ परेशबाबू को प्रणाम किया।

परिशिष्ट

शाम को घर लौटकर गोरा ने देखा- आनंदमई उसके कमरे के सामने के बरामदे में चुपचाप बैठी हैं। आते ही गोरा ने उनके दोनों पैर पकड़कर उन पर अपना सिर टेक दिया। आनंदमई ने उसे दोनों हाथों से उठाते हुए उसका माथा चूम लिया।

गोरा ने कहा, "माँ, तुम्हीं मेरी माँ हो। जिस माँ को मैं खोजता फिर रहा था वह तो यहीं मेरे कमरे में बैठी हुई थीं। तुम्हारी जात नहीं है, तुम ऊँच-नीच का विचार नहीं करीं, घृणा नहीं करतीं- तुम केवल कल्याण की मूर्ति हो। तुम मेरा भारतवर्ष हो! माँ, अब तुम अपनी लछमिया को बुलाओ- उसे कहो, मुझे पानी पिला दे।"

तब आनंदमई ने रुँधे हुए कंठ से मीठे स्वर में गोरा के कान में कहा, "गोरा, अब एक बार विनय को बुला लूँ।"

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय